जैन विद्याओं में जीवविज्ञान

जीवविचार प्रकरण और गोम्मटसार जीवकांड

कु० अंबर जैन

शोधछात्रा, अ० प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा, (म० प्र०)

जैनधर्म अध्यात्मप्रधान है। उसका लक्ष्य मनुष्य तो क्या, सभी कोटि के जीवों को परम उत्कर्ष की स्थिति में पहुँचाने का मार्ग एवं प्रक्रिया प्रस्तुत करना है। वह मनुष्य को 'उत्तम सुख' का प्रेरक है। इसीलिये उसके विपुल साहित्य में आचार्यों ने जीव और जीवन के विषय में पर्याप्त ग्रन्थ लिखे हैं। उन्होंने समय-समय पर षड्-द्रव्यमय संसार का विवरण देते हुए इसकी दुखमयता तथा अचिर सुखमयता का वर्णन करते हुए जीवन को नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से तत्वबोध कराया है। इसी प्रक्रिया में उन्होंने भौतिक जगत में विद्यमान तत्वों, घटनाओं एवं प्राकृतिक चक्रों का भी वर्णन किया है। धर्म का आधार मुख्यतः मानव जीवन है जो समग्र प्रकार के जीवित प्राणियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों आचारांग, प्रज्ञापना, जीवाभिगम, षड्खंडागम आदि में जीवजगत का विवरण पाया जाता है। तत्वार्थसूत्र और उसकी विविध टीकाओं में भी जीव का अच्छा वर्णन है। इन सभी ग्रन्थों में यह वर्णन एक लघु अंश के रूप में है। इसके विपर्यास में, कुछ ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनमें केवल जीवों का ही वर्णन दिया गया है। ये ग्रन्थ उत्तरकालीन ग्रन्थ है। इनमें से दसवीं सदी के उत्तरार्ध से ग्यारहवीं सदी के बीच लिखे गये दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों[1] के विवरणों के विषय में इस लेख में विवेचन किया जा रहा है।

ये दो ग्रन्थ हैं—गुजरात तथा धारानगरी के वासी आचार्य शान्तिभद्रसूरीश्वर का जीवविचार प्रकरण और सुदूर दक्षिण के दिगंबराचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का गोम्मटसार जीवकांड। प्रथम ग्रन्थ लघुकाय है। इसमें कुल ५० गाथायें हैं। इस पर बृहद्वृत्ति और लघुवृत्ति नामक दो टीकायें भी लिखी गई हैं। यह मुनि रत्नप्रभ विजय जी द्वारा संपादित तथा श्री जयंत ठाकर द्वारा अंग्रेजी में अनुदित होकर १९५० में जैन मिशन सोसायटी, मद्रास द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह अल्पज्ञात ग्रन्थ है पर इसके विवरण महत्वपूर्ण है। इसी के किंचित पूर्ववर्ती समय में आचार्य नेमचंद्र ने गोम्मटसार लिखा है। यह बृहत्काय है। इसमें ७३४ गाथायें है। इसके हिन्दी व अंग्रेजी में अनुदित संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इसकी भी दो संस्कृत टीकायें हैं—जीवप्रदीपिका (१६वीं सदी) व मंदप्रबोधिनी (१२वीं सदी)। एक कन्नड़ टीका भी है। दिगंबरों में यह सुज्ञात ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का विवरण विशद है। पर्याप्त गहन भी है। यह भौतिक और भावात्मक—दोनों कोटि का है। प्रथम ग्रन्थ के चार अध्यायों की तुलना में इसमें बाइस अध्याय हैं। दोनों ही ग्रन्थों में जीव के भेद, शरीर, आयु, स्वकायस्थिति, योनि एवं प्राणों का वर्णन दिया गया है। पर जीवकांड में भावात्मक गुणस्थान आधारित वर्णन भी है जो जीव विचार प्रकरण में नहीं है। जीवों के वर्गीकरण भी दोनों ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से दिये गये हैं। जहाँ जीवकांड में जीवों के ९८ जीवसमास बताये गये हैं, वहाँ जीव विचार में ३२ तक की संख्या ही पहुँची है। दोनों ग्रन्थों की प्रायः समसामयिकता को देखते हुए इनके विवरणों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक विषय है।

लेखक आचार्यों का जीवनवृत्त

यह संयोग की ही बात है कि उपरोक्त दोनों ग्रन्थों के लेखक आचार्यों का जीवनवृत्त सुज्ञात नहीं है। यह केवल परोक्ष आधारों पर ही, आंशिक रूप में, ज्ञात किया जा सका है। बेलाणी ने दोनों ही आचार्यों को विक्रमी ग्यारहवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदी का बताया है। ऐसा प्रतीत होता है कि नेमचंद्राचार्य की तुलना में आ० शान्ति सूरीश्वर के विषय में किंचित अधिक सूचनायें उपलब्ध हैं।

नेमचन्द्राचार्य[२] के जीवन के विषय में अनेक विद्वानों ने विचार किया है। उनका निष्कर्ष यह है कि वे देशीयगण के थे और दक्षिण भारत के कर्णाटक क्षेत्र के गंगराज राजमल्ल और उसके मंत्री गोम्मट या चामुंडराय के समकालीन थे। अपने ग्रन्थों में उन्होंने अभयनंदि, इंद्रनंदि, वीरनंदि, कनकनंदि और अजितसेन आचार्यों का गुरु के रूप में उल्लेख किया हैं। इनमें से अभयनंदि सबके गुरु हैं और अन्य आचार्य नेमचन्द्र के वरिष्ठ सहपाठी हैं। ये सभी महाकवि रन्न के समकालीन हैं। शास्त्री ने वीरनंदि का समय ९५०–१०१९ ई० बताया है। गोम्मटेश्वर बाहुबली का मूर्तिप्रतिष्ठाकाल ९८१ ई० का पूर्वार्ध माना जाता है। इसी आधार पर १९८१ में इसका सहस्राब्दि समारोह मनाया गया। गंग राजमल्ल का राज्यकाल भी ९७२–९८२ ई० माना जाता है। उपरोक्त प्रतिष्ठा नेमचंद्र की प्रेरणा से ही संपन्न हुई थी। नेमचंद्र के ग्रन्थों में प्रतिष्ठित मूर्ति का विवरण भी मिलता है। विक्रमी ग्यारहवीं सदी के कुछ शिलालेखों के प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं। इनसे नेमचंद्र का समय दशवीं सदी ईस्वी का उत्तरार्ध और ग्यारहवीं सदी ईस्वी का पूर्वार्ध माना जा सकता है। गण, गुरु और अनुमानित समय के अतिरिक्त इनके विषय में, इनकी कृतियों (मुख्यतः पाँच) के अतिरिक्त, अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती। इनके ग्रंथों से एवं सिद्धान्तचक्रवर्ती की उपाधि से इनकी आगमज्ञता एवं अगाध ज्ञानगरिमा का अनुमान अवश्य लगता है। ये दिगंबराचार्य थे।

आ० शान्तिसूरिश्वर ने 'जीव विचार' के कर्ता के रूप में पचासवीं गाथा में अपना नाम दिया है। जोहरापुरकर और कासलीवाल[३] ने अपने ग्रन्थ में इन्हें ९७३ से १०७३ ई० के बीच का माना हैं। पालनपुर के समीप रामसिने जैनमंदिर में प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि इन्होंने १०२७ ई० में एक भगवत् प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई था। ये तपागच्छ या बड़गच्छ के अंतर्गत प्रचलित थारापद्र गच्छ के श्वेताम्बराचार्य थे। इनके जीवन का विवरण चन्द्रप्रभसूरि रचित प्रभावकचरित में प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ निर्णयसागर प्रेस से १९०९ में प्रकाशित हुआ है। तपागच्छ पट्टावली से भी इनके जीवन की कुछ घटनाओं का ज्ञान होता है।

आ० शान्तिसूरि का जन्म अणहिलपुर पाटन (गुजरात) में तत्कालीन प्रसिद्ध राजा भीम के समय में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम क्रमशः धनदेव सेठ और धनश्री था। इनका बचपन का नाम भीम रखा गया था। इनके बाल्यकाल में ही पाटन में आ० विजयसिंह पधारे। उन्होंने भीम को देखकर उसके स्वर्णिम भविष्य का अनुमान लगाया। उन्होंने इनके माँ-बाप से भीम को अपने साथ रखने के लिये अनुज्ञा चाही और वे आ० विजयसिंह के साथ हो गये। समुचित अध्ययन एवं चरित्र की योग्यता प्राप्त करने पर उन्हें संघ में दीक्षित किया गया और उनका नाम शांति (भद्र) सूरि रखा गया। ये मूर्तिपूजक आचार्य थे। ये अच्छे कवि और वादी थे। राजा भीम की सभा में इनका बहुत सम्मान था। इनकी प्रतिष्ठा सुनकर मालवा की धारा नगरी (अब मध्यप्रदेश) के महाकवि धनपाल ने इन्हें उज्जैन बुला लिया। उस समय वहाँ राजा भोज का राज्य था। उनकी राजसभा में भी इन्होंने अपने काव्य एवं वाद-विद्या के प्रकांड पांडित्य से अपनी प्रतिष्ठा अर्जित की। धनपाल की 'तिलकमंजरी' का भी इन्होंने संशोधन/संपादन किया। इससे प्रसन्न होकर राजा भोज ने इन्हें 'वादिवेताल' की उपाधि प्रदान की।

ये आगम के साथ-साथ मंत्र और ज्योतिष विद्या के भी ज्ञाता थे। पाटन के सेठ जिनदेव के पुत्र पद्मदेव के सर्पदंश को इन्होंने अमृतत्व मंत्र के द्वारा दूर किया था। इसी प्रकार पद्मावती एवं चक्रेश्वरी देवी के प्रभाव से इन्होंने भविष्यवाणी की थी कि धूलिकोट (गुजरात) नगर का पतन होनेवाला है। इससे वहाँ के श्रीमाली जैनों के ७०० परिवार समय रहते सुरक्षित स्थानों पर पहुँच गये। यह १०४० ई० की घटना है। सोढ श्रावक के साथ गिरिनार की वन्दनार्थ गये थे। इनके अनेक शिष्य थे। इनमें वीर, शालिभद्र और सर्वदेव प्रमुख बताये जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी कृतियों में 'जीवविचार प्रकरण' के अतिरिक्त उत्तराध्ययन सूत्र की एक दीर्घकाय टीका भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अन्तिम अध्याय से ही इन्हें **जीव विचार प्रकरण** लिखने की प्रेरणा मिली होगी।

इनकी मृत्यु की तिथि के विषय में मतभिन्नता पाई गई है। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार, इनकी मृत्यु १०५५ ई० में हुई जबकि प्रभावक चरित के अनुसार, इनकी सल्लेखना समाधि १०४० ई० में हुई। यदि इनका औसत आयुकाल साठ वर्ष भी माना जावे, तो अनुमानतः ये ९८८–१०४० के बीच जीवित रहे। इस आधार पर नेमचंद्राचार्य इनसे कुछ वरिष्ठ आचार्य सिद्ध होते हैं।

जीव विचार प्रकरण की विषयवस्तु

जीव विचार प्रकरण में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में संसार में विद्यमान विविध प्रकार के जीवों का वर्गीकरण कर संसारी जीवों का निरूपण किया गया है। दूसरे अध्याय में मुक्त जीवों का निरूपण है। तीसरे अध्याय में संसारी जीवों के शरीर की अवगाहना, आयु, स्वकाय स्थिति, प्राण एवं योनियों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में सिद्धों के हो इन गुणों का वर्णन है। उपसंहार में, मनुष्य जीवन में धर्मवृत्ति में प्रवृत्त होने का निर्देश है। अन्य तीन अध्यायों की तुलना में प्रथम अध्याय सबसे बड़ा है, पूर्ण ग्रन्थ का लगभग दो-तिहाई भाग है। सभी अध्यायों की विषयवस्तु का संक्षेपण यहाँ किया जा रहा है। यहाँ यह जान लेना भी उचित होगा कि बहुतेरी विषय-वस्तु मूल गाथाओं में नहीं है, फिर भी उसे रत्नाकर पाठक ने अपनी बृहद्वृत्ति टीका (सोलहवीं सदी, १५५३ ई०) में अन्य शास्त्रों के आधार से संकलित कर दिया है।

जीवों का सामान्य वर्गीकरण

जैन आर्ष परम्परा में जीवों या सजीव जगत् के दो भेद किए गये हैं: संसारी और मुक्त या असंसारी। त्रिलोक व्यापी सभी जीव संसारी कहलाते हैं और ये दो प्रकार के होते हैं: स्थावर और त्रस। शीतोष्ण भयादि कष्टों के परिहार के लिए जो प्रयत्न करते हैं, गतिशील होते हैं, वे त्रस कहलाते हैं। जो जीव इन कष्टों को दूर नहीं कर पाते या स्थिर रहते हैं, वे स्थावर कहलाते हैं। इनकी यह संज्ञा त्रस और स्थावर नाम कर्म के कारण भी मानी जाती है। (इससे गर्भावस्था, सुषुप्ति में त्रसाभाव एवं जलवायु अग्नि में त्रसत्व का प्रसंग नहीं आ पाता)। उत्तराध्ययन[6] के युग में वायु, अग्नि और उदार (द्वीन्द्रियादि) को त्रस और पृथ्वी, जल और वनस्पति को स्थावर कहा जाता था। इसके विपर्यास में, शान्तिसूरि ने स्थावर के पाँच भेद—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति एवं त्रस के चार भेद किए हैं। इनमें सिद्ध के जुड़ जाने के समस्त जीव जगत् दस प्रकार का हो जाता है। टीकाकार ने जीवाभिगम सूत्र का उद्धरण देते हुए जीवों के दो, तीन आदि दस तक, चौदह, चौबीस और बत्तीस भेद बताये हैं। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, ज्ञान, आहार, भाषा, शरीर, दर्शन, तथा चरमभव के आधार पर तेरह रूपों की द्विविधता बताई गई है। इसी प्रकार सात रूपों की त्रिविधता, चार रूपों की चतुर्विधता, एक रूप की पंचविधता, शरीर व इन्द्रिय के आधार पर दो रूपों की षड्-विधता, काय के आधार पर एक रूप की सप्त विधता, ज्ञान व योनि के आधार पर दो रूप की अष्टविधता, दो प्रकार की नवविधता एवं दशविधता जीवाभिगम से उद्धृत की गई है। मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति के आधार पर चौबीस दण्डकों के रूप में जीवों के चौबीस भेद होते हैं:

१. पृथ्वीकायिक आदि ५ के दंडक	५
२. २, ३, ४ इन्द्रिय जीवों के दंडक	४
३. मनुष्य जीवों के दंडक	१
४ नारक जीवों के दंडक	१
५. असुरकुमार आदि भवनवासियों के दंडक	१०
६-८. व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिकों के दंडक	३
	२४

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इसी प्रकार, वर्गीकरण का विस्तार करने पर जीवों के ३२ भेद भी हो जाते हैं :

(१) एकेन्द्रिय के	२२ भेद	पाँच प्रकार के एकेन्द्रियों के सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से,	५ × २ × २ = २०
		सूक्ष्म साधारण वनस्पति (पर्याप्त, अपर्याप्त)	२
			२२
(२) २, ३, ४ इंद्रिय जीवों के	६ भेद	पर्याप्त, अपर्याप्त,	२ × ३ = ६
(३) पंचेन्द्रियों के	४ भेद	संज्ञी/असंज्ञी × पर्याप्त-अपर्याप्त	१ × २ × २ = ४
	३२		३२

स्थावर-जीवों के भेद-प्रभेद : (अ) पृथ्वीकायिक

उत्तराध्ययन में बताया गया है कि एकेन्द्रिय जाति के सूक्ष्म कोटि के जीवों की एक ही पर पृथक्-पृथक् जातिगत कोटि होती है। इसलिए इस ग्रन्थ में सूक्ष्म स्थावरों की चर्चा नहीं की गई है। स्थावरों के भेद-प्रभेदों में केवल बादर स्थावरों के ही भेद कहे गये हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिकी के निम्न २० भेद होते हैं :

सारणी १ : एकेन्द्रिय जीवों के भेद

१. पृथ्वीकायिकों के भेद

१. स्फटिक
२. मणि (समुद्रोत्पन्न)—१४
३. रत्न (खनिज)
४. विद्रुम (मूंगा)
५. अभ्रक
६. मृत्तिका
७. पाषाण
८. रसेन्द्र (पारद)
९. कनकादि धातु—७
१०. हिंगुल
११. हरताल
१२. मनःशिल
१३. खटिक
१४. अन्वर्णिक
१५. अरणेटक
१६. पलेवक
१७. तूरी
१८. ऊषम (खनिज सोडा, सज्जी)
१९. सौवीरांजन (सुरमा)
२०. लवण

२. जलकायिकों के भेद

१. भूमिज जल (कूप, ताल आदि)
२. अन्तरिक्ष
३. ओस
४. हिम
५. ओला
६. हरि-तनु (घास पर जमी बूंदें)
७. कुहरा

३. अग्निकायिकों के भेद

१. अंगार
२. ज्वाला
३. मुर्मुर
४. उल्का
५. अशनि
६. कनक
७. विद्युत्
८. शुद्धाग्नि (ईंधनहीन अग्नि)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन में पृथ्वी के दो भेद अधिक गिनाये गये हैं और मणि के १८ प्रकार बताये हैं। इस प्रकार बादर पृथ्वीकायिक के ४० भेद बताये गये हैं। प्रज्ञापना[५] का भी यही वर्णन है। इस जीव विचार में धातुओं और स्फटिक-मणि-रत्नों का संक्षेपण कर २० भेद ही बताये गये हैं। प्रज्ञापना में इनके वर्ण-रसादि की विविधता से असंख्यात रूप बताये गये हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में सम्भवतः सर्वप्रथम पञ्चसंग्रह ने पृथ्वीकायिक के ३६ भेद गिनाये हैं।

जलकायिक जीवों के ग्रन्थगत सात भेदों के विपर्यास में, प्रज्ञापनाकार ने १७ भेद बताये हैं। इसमें उन्होंने झरना, कांजी, क्षार, विभिन्न समुद्रों के जल आदि को भी परिगणित किया है। दिगम्बराचार्य अमृतचन्द्र और उत्तराध्ययन ने केवल पाँच भेद बताये हैं। वट्टकेर जल के ७ और पृथ्वी के ३६ भेद मानते हैं।

शान्तिसूरि अग्निकायिक जीवों के ८ भेद मानते हैं। इसके विपर्यास में दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन ७, प्रज्ञापना १२ तथा मूलाचार[७] ६ भेद गिनाते हैं।

इसी प्रकार जहाँ शान्तिसूरि वायुकायिकों के ८ भेद बताते हैं, वहीं मूलाचार ७, उत्तराध्ययन ६ एवं प्रज्ञापना १९ भेद निरूपित करते हैं।

सारणी २ : वनस्पतिकायिकों के भेद

(i) बादर साधारण वनस्पति

१. कंद, (प्याज, लहसुन आदि)
२. अंकुर
३. किसलय (कोंपल)
४. पनक (लकड़ी के फंगस)
५. शेवाल (काई)
६. भूमिस्फोटक (कुकुरमुत्ता)
७. आर्द्रकत्रिक (अदरख, हल्दी, कचूर)
८. गाजर
९. मोथा (नागरमोथा)
१०. बथुआ की भाजी
११. थेग (बल्वनुमा मड़)
१२. पल्यंक
१३. कोमल फल (पकने के पूर्व)
१४. गूढ शिर पत्ते
१५. कांटेदार पौधे
१६. गुग्गुल
१७. गिलोय (गड़ूची)
१८. छिन्न-रुह वनस्पतियाँ
१९. कुमारी (आलुअ)

(ii) बादर प्रत्येक वनस्पति

१. फल
२. पुष्प
३. छल्ली या छल्ल
४. काष्ठ
५. जड़
६. पत्र
७. बीज

(iii) विशेष प्रत्येक वनस्पतियाँ

१. वृक्ष : एकबीज ३०, बहुबीज ३३
२. गुच्छ ४७
३. गुल्म २४
४. लता १०
५. बल्ली ४१
६. पर्वग १९
७. तृण १८
८. वनलता १७
९. हरित शाक २८
१०. औषधि-धान्य २७
११. जलोत्पन्न वनस्पति २६
१२. कुकुरमुत्ता (कुहन) १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायः सभी शास्त्रों में वनस्पतिकायिकों के दो भेद बताए गए हैं : साधारण (अनन्तकाय, निगोद) और प्रत्येक वनस्पति। साधारण वनस्पतियों की शरीर-निष्पत्ति, श्वासोछ्वास, आहार आदि क्रियायें एक साथ होती हैं। इनमें अनन्त जीवों का एक ही शरीर होता है। टीकाकार के अनुसार, साधारण वनस्पति सूक्ष्म और स्थूल के भेद से दो प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म साधारण वनस्पति गोलाकार होते हैं। वे बालाग्र प्रदेश-क्षेत्र में भी असंख्य-संख्या में रह सकते हैं। एक ही शरीर या क्षेत्र में असंख्य या अनन्त सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व के कारण इन्हें अनन्तकायिक भी कहते हैं। ये आँखों से दिखाई नहीं देते और सर्वलोक में व्याप्त रहते हैं। इनके निम्न बादररूपों का शास्त्रों में विवरण दिया गया है। टीकाकार ने बताया है कि आगमों में साधारण बादर वनस्पति के ३२ नाम बताये गये हैं। ये नाम उपरोक्त उन्नीस के ही विस्तार हैं। इसी के अन्य रूप में बाइस अभक्ष्यों का भी विवरण दिया गया है। यह कहा गया है कि जीव हिंसा की दृष्टि से इन्हें न खाना श्रेयस्कर है। प्रज्ञापना में इनके ५० भेद बताए गए हैं। साधारण वनस्पतियों के विपर्यास में, प्रत्येक वनस्पति वे हैं जिनमें एक शरीर में एक ही जीव रहता है। इनकी सात जातियाँ बताई गई हैं। उन्हीं के विस्तारस्वरूप टीकाकार पाठक ने प्रज्ञापना सूत्र में वर्णित बारह जातियों का नाम दिया है जिनके विशिष्ट नामों की सूची (३३०) सन्दर्भपूर्वक उद्धरित की गई है। ऐसी सूची दिगम्बर ग्रन्थों में नहीं पाई जाती। प्रज्ञापना के अनुसार, प्रत्येक और साधारण वनस्पति के भेद बादर-जाति में ही होते हैं, पर टीकाकार ने इन्हें सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार का बताया है। उत्तराध्ययन के अनुसार, सूक्ष्म वनस्पति जीवों की एक ही कोटि है जो अदृश्य, अनन्त एवं लोक व्याप्त है। वहाँ प्रत्येक वनस्पति के बारह तथा साधारण के २२ प्रकार बताये गये हैं।

टीकाकार पाठक ने साधारण वनस्पतियों के दो अन्य भेद भी निरूपित किये हैं—सांव्यवहारिक और असांव्यवहारिक। इन्हें दिगम्बर परम्परा में इतरनिगोद एवं नित्यनिगोद के समकक्ष मानना चाहिये। नित्यनिगोदी अपनी जाति से उत्परिवर्तित नहीं होते जब कि इतरनिगोदी में यह क्षमता होती है।

वनस्पति जगत् का इतना विस्तार दिगम्बर परम्परा में नहीं पाया जाता। लेकिन इस परम्परा के विवरण में कुछ विशेषताएँ हैं। मूलाचार के अनुसार वनस्पति प्रत्येक और साधारण कोटि के होते हैं। ये दोनों ही दो प्रकार के होते हैं—बीजोत्पन्न और सम्मूर्छन। बीजोत्पन्नों में मूल बीज, अग्र बीज, पर्व बीज, कंद बीज, स्कन्ध बीज और बीज-बीज के रूप में छह प्रकार के वनस्पति होते हैं। इनके विपर्यास में, सम्मूर्छन वनस्पपियों में कन्द, मूल, छाल, स्कन्ध, पत्र, किसलय, फूल, फल, गुच्छ, गुल्म, बेल, मृण और पर्व या गाँठ वाले १३ प्रकार के वनस्पति होते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य गाथा में काई, पणक, कूड़े-करकट में होने वाले वनस्पति, किण्व और कुकुरमुत्ते की जातियाँ भी बताई गई हैं। सम्मूर्छन वनस्पति के लिये किसी भी प्रकार के बीज या केन्द्र की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि दिगम्बर परम्परा में वनस्पति की कोटि उसके जन्म एवं विकास की दशाओं पर निर्भर करती है। इस परम्परा में प्रज्ञापना के विपर्यास में साधारण और प्रत्यक—दोनों कोटियों के सूक्ष्म और बादर भेद भी गिनाये हैं। नेमचन्द्राचार्य भी इस परम्परा को मानते हैं। दशवैकालिक में सम्मूर्छन वनस्पति कोटि का उल्लेख है।

स्थावर-भेदों के परिगणन के विवरण में यह बताया गया है कि रूप, रस, गन्ध, वर्ण एवं देश-काल भेदों के कारण सभी जाति के भेद-प्रभेदों की संख्या अगणित हो सकती है। दिगम्बर परम्परा में अगणितता की यह सम्भावनात्मक व्याख्या नहीं पाई जाती।

यहाँ यह उल्लेख ज्ञानवर्धक होगा कि युवाचार्य महाप्रज्ञ[६] ने यह शंका उठाई है कि वनस्पतियों की सजीवता तो अनेक दर्शन, और अब विज्ञानी भी, मानते हैं, पर पृथ्वी, जल, तेज और वायु को स्वयं सजीवता न बौद्ध और नैयायिक ही मानते हैं और न विज्ञान ही मानता है। फिर शास्त्र-संगति कैसे बैठायी जावे ? इसके समाधान में उन्होंने बताया है कि जैन दर्शन समस्त दृश्यजगत् को सजीव और जीव के परित्यक्त शरीर के रूप में दो ही प्रकार का मानता है। इसके अनुसार, सभी पदार्थ मूल में सजीव ही होते हैं, शस्त्रोपहति, उष्णता, विरोधिद्रव्य संयोग से उनमें निर्जीवता आ जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रस जीवों का विवरण : दो इन्द्रिय जीव

जैन दर्शन में जीवों का विभाजन ज्ञान के विकासक्रम पर आधारित है। स्थावर जीवों का ज्ञान निम्नतर कोटि का होता है और वे केवल स्पर्शनेन्द्रिय के माध्यम से ही संवेदनशील होते हैं। उसी के माध्यम से वे पाँचों इन्द्रियों की अनुभूति कर लेते हैं। इनसे उच्चतर संवेदनशीलता वाले जीव त्रस कहलाते हैं। ये दो इन्द्रिय, तीन, चार एवं पंचेन्द्रिय के भेद से मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं। जीव विचार प्रकरण में दो इन्द्रिय जीवों की ११ कोटियाँ गिनाई हैं। तीन इन्द्रिय जीवों की १६ कोटियाँ गिनाई हैं। चार इन्द्रिय जीवों की नौ और पंचेन्द्रिय जीवों की चार कोटियाँ बताई गई हैं, जैसा सारणी ३ में दिया गया है। उत्तराध्ययन और प्रज्ञापना से ज्ञात होता है कि शान्तिसूरि ने भेद-प्रभेद गिनाने में अति-

सारणी ३ : त्रस जीवों के भेद-प्रकार

(अ) दो इन्द्रिय	(ब) तीन इन्द्रिय	(स) चतुरिन्द्रिय त्रस
१. शंख	१ कनखजूरा	१. बिच्छू
२. कपर्दक या कौड़ी	२. खटमल	२. टिंकुण
३. गंडोलक (लंघु कृमि)	३. जूँआ	३. भौंरे और चींटियाँ
४. जलौका (गोंच)	४. चींटी	४. टिड्डी
५. चन्दनक (समुद्र कृमि)	५. सफेद चींटी (दीमक)	५. मक्खी
६. अलस (केंचुआ)	६. काली चींटी	६. डांस
७. लहक (लार कृमि)	७. इल्ली	७. मच्छर
८. मेहरक (काष्ठ कृमि)	८. घृत-इलिका	८. कंसारिक
९. कृमि (आँत कृमि)	९. गौ-कर्ण-कीट	९. कपिलक
१०. पूतरक (लाल कीट)	१०. गर्दभक कीट	**(स) पंचेन्द्रिय जीव**
११. मातृवाहिका (चुडैला कृमि)	११. धान्य कीट	१. नारक
	१२. गोमय कीट	२. तिर्यंच
	१३. इन्द्रगोप कीट	३. मनुष्य
	१४. सावा कीट	४. देव
	१५ चौर कीट	
	१६. कुंथु-गोपालिक कीट	

सारणी ४ : विभिन्न शास्त्रों में त्रसों के भेद

	उ० अ०	प्रज्ञापना	जीवविचार	मूलाचार
द्विन्द्रिय	१४	२९	११	—
त्रि-इन्द्रिय	१६	३९	१६	—
चतुरिन्द्रिय	२६	३८	९	—
पंचेन्द्रिय	४	४	४	४

संक्षेपण किया है। इसे सारणी ४ से जाना जा सकता है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में त्रसकायिक जीवों के भेद-प्रभेद कम ही पाये जाते हैं। मूलाचार और तत्वार्थसूत्र 'कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि' के आधार पर केवल प्रारूपिक उदाहरण देते हैं। जीवविचार के टीकाकार ने बताया है कि विभिन्न त्रसजीवों को पहचानने के तीन उपाय हैं :

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

(१) **इन्द्रियाँ**—भौतिक इन्द्रियों से इनकी इन्द्रियता पहचानी जा सकती है। उत्तरवर्ती इन्द्रिय वाले जीव के पूर्ववर्ती इन्द्रियाँ अवश्य होती हैं।

(२) **पादों की संख्या**—सामान्यतः दो इन्द्रिय जीवों को पैर नहीं होते। तीन इन्द्रिय जीवों के चार, छह या अधिक पैर होते हैं। चार इन्द्रिय जीवों के छह या आठ चरण होते हैं। पंचेन्द्रियों के दो, चार या आठ पैर होते हैं। मत्स्य, सर्प इत्यादि जीवों के विषय में ये नियम लागू नहीं होते।

(३) **बालों का स्वरूप**—दो इन्द्रिय जीवों के बाल नहीं होते। तीन इन्द्रिय जीवों के चेहरे के दोनों ओर बाल होते हैं। चार इन्द्रिय जीवों के सिर के दाहनी ओर सींग या केशगुच्छ होते हैं।

पंचेन्द्रियों का विवरण : पंचेन्द्रिय तिर्यंच

जैनों की दोनों परम्पराओं में पंचेन्द्रिय जीवों के चार भेद बताये गये हैं—नारक, देव, तिर्यंच और मनुष्य। इनमें नारक सात प्रकार के होते हैं और देव भवनवासी (१०), व्यंतर (८+८), ज्योतिष्क (५) और वैमानिक (२) के भेद से चार प्रकार के होते हैं। जैनों की दोनों परम्पराएँ किंचित् भेद-प्रभेदों के अन्तर के साथ इनको मानती हैं। जीव-विचार प्रकरण के टीकाकार ने व्यंतरों के आठ की जगह सोलह भेद बताये हैं।

हमारे लिये पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों का विवरण महत्वपूर्ण है। शान्तिसूरि के अनुसार, तिर्यंच तीन प्रकार के—जलचर, थलचर और नभचर होते हैं। जलचर के–सुसुमार, मत्स्य, कच्छप, मगर और ग्राह–पाँच भेद बताये गये हैं। प्रज्ञापना और उत्तराध्ययन में भी ये ही भेद हैं, पर प्रज्ञापना में इन जातियों के प्रभेद भी बताये गये हैं :

१. **सुसुमार :** यह जलचर भैंस के समान होता है। इनका आकार-प्रकार एक ही प्रकार का होता है।

२. **मत्स्य** : ये २३ जाति के होते हैं—श्लक्ष्ण, खबल, जुंग, विजडिम, हल्डि, मकरी, रोहित, हलिसागर, गागर, वट, वटकर, गर्भज, उसागर, तिमि, तिमिंगल, नक्र, तंदुल, कणिका, शरलि, स्वस्तिक, लंभन, पताका और पताकातिपताका।

३. **कच्छप :** ये दो प्रकार के होते हैं—अस्थिबहुल, मांसबहुल।

४. **मगर :** ये दो प्रकार के होते हैं—शौण्डमकर, मृष्टमकर।

५. **ग्राह** : ये **पाँच** प्रकार के होते हैं—दिली, वेष्टक, मूर्धज, पुलक और सीमाकार।

पंचेन्द्रिय थलचर तिर्यंच तीन प्रकार के होते हैं :

१. **चतुष्पाद :** के चार प्रकार हैं—एकखुर, दो-खुर, गंडीपद और सनखपद। इनमें एकखुर–तिर्यंच अश्व, खच्चर, घोड़ा, गर्दभ, गोरक्षर, कंदलक, श्रीकंदलक और आवर्तक के भेद से आठ प्रकार के होते हैं। दो-खुरी तिर्यंच ऊँट, गौ, गवय, महिष, मृग, रोज, पशुक, साँभर, वराह, बकरा, एलक, रुरु, सरभ, चमरी गाय, कुरंग, गोकर्ण के भेद से १७ प्रकार के होते हैं। गंडीपद हाथी, हस्ति पूतनक, मत्कुण हस्ती, खड्गी और गंडा के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं। नखपदी तिर्यंचों में सिंह, व्याघ्र, दीपड़ा, भालू, तरक्ष, पाराशर, कुत्ता, बिल्ली, सियार, लोमड़ी, खरगोश, कोलश्वान, चीता, चिल्लक आदि चौदह जातियाँ होती हैं।

२. **भुज-परिसर्प :** के चौदह प्रकार हैं—नेवला, गोह, गिरगिट, शल्य, सरठ, सार, खोर, छिपकली, चूहा, बिसभरा, गिलहरी, पयोलातिक, क्षीर-विडालिका।

३. **उरः परिसर्प** : चार प्रकार के हैं—सर्प, अजगर, आसालिक, महोरग। साँप दो प्रकार के होते हैं—फन वाले और फणरहित—फन वाले साँपों के १५ भेद हैं—आशीविष, दृष्टिविष, उग्रविष, भोगविष, त्वचाविष, लालाविष,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्छ्वासविष, निःश्वासविष, कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दर्भपुष्प, कोलाह, मेलिभिन्द, शेषेन्द्र। फणरहित सर्प दस प्रकार के होते हैं : दिव्याक, गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मंडली, माली, अहि, अहिशलाका, वासपताका।

अजगर एक ही जाति का होता है।

आसालिक : तिर्यंच अनिष्ट के संकेत के रूप में सूक्ष्मरूप में उत्पन्न होते हैं और अपना बृहदाकार धारण कर अनिष्ट की सूचना देते हैं। इनकी आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है।

महोरग : चौदह प्रकार के होते हैं, जो इनके विस्तार पर निर्भर करता है। वे अंगुल, अंगुल पृथक्त्व (२–९ अं०), वितस्ति, वितस्ति पृथक्त्व (२–९ बीता), रत्नि, रत्नि पृथक्त्व (२–९ हाथ), धनुष, धनुष पृथक्त्व, गव्यूति, गव्यूति पृथक्त्व, योजन, योजन पृथक्त्व, योजनशत एवं सहस्र योजन वाले होते हैं।

पंचेन्द्रिय नभचर तिर्यंच (पक्षी) चार प्रकार के हैं—चर्म पक्षी, रोम पक्षी, समुद्ग पक्षी, वितत पक्षी। इनमें वितत पक्षी एक ही प्रकार के होते हैं और मनुष्यलोक में नहीं पाये जाते। इसी प्रकार समुद्ग पक्षी भी एकजातीय हैं और मनुष्यलोक के बाहर ही पाये जाते हैं। चर्म पक्षियों एवं रोम पक्षियों के क्रमशः आठ और चालीस प्रकार बताये गये हैं :

१. चर्म पक्षी—बगुला, जलौका, अडिल्ल, भारंड, चकवा-चकवी, समुद्री कौवे, कर्णत्रिक एवं पक्षिविडाली–८।

२. रोम पक्षी—ढंक, कंक, कुरल, कौवा, चकवा, हंस, कलहंस, राजहंस, पादहंस, अड़, सेड़ो, बगुला, बक-पंक्ति, पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मयूर, मसूर, मेसर, शतवत्स, गहर, पोंडरीक, काक, कामंजुक, बंजुलक, तीतर, बत्तक, लावक, कबूतर, कपिंजल, पारावत, चिटक, चास, मुर्गा, तोता, मैना, बर्हीं, कोयल, सेह, वरिल्लक–४०।

यह बताया गया है कि उपरोक्त भेद-प्रभेद मुख्य-मुख्य हैं। इनके समान अन्य तिर्यंच भी हो सकते हैं, जिन्हें परीक्षा कर भिन्न-भिन्न जातियों में समाहित किया जा सकता है। इसीलिये प्रत्येक सूची के अन्त में 'इत्यादि' शब्द लगा हुआ है और उसमें समय-समय पर होने वाले निरीक्षणों के संयोजन के लिये स्थान छोड़ दिया गया है। तिर्यंचों के भेदों के प्रभेद प्रज्ञापना में दिये गये हैं। दिगम्बर परम्परा में प्रभेदों का विवरण नहीं मिलता।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सामान्यतः तिर्यंच दो प्रकार के होते हैं : विकलेन्द्रिय और सक-लेन्द्रिय। विकलेन्द्रिय तिर्यंच एक, दो, तीन व चार इन्द्रिय जीव होते हैं और सकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय होते हैं।

पंचेन्द्रिय मनुष्यों का विवरण

शान्तिसूरि के अनुसार, गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं : कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज। इन कोटियों के क्रमशः १५, ३० और २८ भेद होते हैं। शास्त्रों के अनुसार, गर्भज के अतिरिक्त, मनुष्य संमूर्छनजन्मी (अलिंगी) भी होते हैं, जो मल, मूत्र, कफ, पीप, रक्त, शव, संभोग, नालीमल आदि गन्दे स्थानों में उत्पन्न होते हैं। ये असंज्ञी, सूक्ष्म और अन्तर्मुहूर्तायु के होते हैं। मनुष्यों के ये भेद क्षेत्र-निवास के आधार पर किये गये हैं। मनुष्यलोक के अढ़ाई द्वीपों के ५ भरत, ५ ऐरावत एवं ५ महाविदेह कर्मभूमियाँ कहलाती हैं। इसी प्रकार, अकर्मभूमियाँ भी ३० होती हैं। ये भोगभूमि की कोटि की कल्पवृक्षी भूमियाँ हैं।

हमलोग कर्मभूमियों में निवास करने वाले मनुष्य हैं। ये समान्यतः दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। आर्यों के गुणों के आधार पर दो भेद हैं—ऋद्धिप्राप्त और अनृद्धि प्राप्त। ऋद्धिप्राप्त आर्यों में अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारणमुनि, विद्याधर आदि समाहित होते हैं। सामान्य मानव जाति अनृद्धिप्राप्त आर्यों में गिनी जाती है। उसके नौ भेद एवं अनेक प्रभेद हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **क्षेत्रार्य :** देश के २५½ क्षेत्रों में रहने वाले क्षेत्रार्य कहलाते हैं। भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने से इन क्षेत्रों का ज्ञान रोचक होगा—मगध (राजगृह), अंग (चम्पा), बंग (तामलुक), कलिंग (कंचनपुर), काशी (वाराणसी), कोशल (अयोध्या), कुरु (गजपुर), पंचाल (कंपिला), जंगल (अहिच्छत्र), सौराष्ट्र (द्वारका), विदेह (मिथिला), वत्स (कौशांबी), शांडिल्य (नन्दीपुरा), मलय (भद्दिलपुर), मत्स्य (विराट् नगर), वरण(अच्छापुरी), दशार्ण (मृत्तिकावती), चेदि (शुक्तिमती), सिन्धु-सौवीर (बीतभय नगर), शूरसेन (मथुरा), भंग (पावापुरी), पुरावर्त (माषानगरी), कुणाल (श्रावस्ती), लता देश (कोटिवर्ष) तथा केकयार्ध (श्वेतांबिका नगरी), कुशावर्त (शौरीपुर)। इस सूची से स्पष्ट है कि आर्यावर्त पश्चिम (द्वारका), उत्तर (मथुरा आदि) एवं पूर्वी (बिहार, बंगाल व उड़ीसा) भारत का क्षेत्र माना जाता था। दक्षिण भारत म्लेच्छ देश माना जाता था क्योंकि म्लेच्छों के अनेक नाम इस क्षेत्र के अनुरूप हैं।

२. **जात्यार्य :** अंबष्ठ, कलिंद, विदेह, वेदग, हरित और चुंचुण–६।

३. **कुलार्य :** उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य–६।

४. **कर्मार्य :** दूष्यक (वस्त्र), सौत्रिक (धागा), कार्पासिक, सूत्र वैतालिक, भाँड-वैतालिक (वणिक्), कुम्हार और नर-वाहनिक–७। इनमें कुछ व्यवसाय सम्बन्धी नाम और जोड़े जा सकते हैं।

५. **शिल्पार्य :** रफूगर, जुलाहा, पटवा, दूतिकार, पिच्छिकार, चटाईकार, काष्ठ-मुंज पादुकाकार, छत्रकार, वह बाह्यकार, पुच्छकार या जिल्दसाज, लेप्यकार, चित्रकार, दन्तकार, शंखकार, भाँड़कार, जिह्वाकार, वैल्यकार, आदि १९ प्रकार के शिल्पकार।

६. **भाषार्य :** ब्राह्मी लिपि व अर्धमागधी भाषा बोलने वाले भाषार्य कहलाते हैं। ब्राह्मी लिपि १८ रूपों में लिखी जाती है, अतः भाषार्य भी १८ होते हैं।

७. **ज्ञानार्य :** मतिज्ञानार्य, श्रुतज्ञानार्य, अवधिज्ञानार्य, मनःपर्यय ज्ञानार्य एवं केवल ज्ञानार्य–५।

८. **दर्शनार्य :** सराग दर्शनार्य (१० भेद), वीतराग दर्शनार्य (२ भेद)–२।

९. **चारित्रार्य :** सराग चारित्रार्य (२ भेद), वीतराग चारित्रार्य (२ भेद)–२। ये गुणस्थानों पर आधारित हैं।

इस प्रकार निवास, कुल, कर्म, शिल्प, भाषा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि की विशेषताओं के आधार पर आर्य मनुष्यों का यह वर्गीकरण है। यह माना जा सकता है कि सामान्यतः आर्य जैन हो सकते हैं।

म्लेच्छ-मनुष्यों का वर्गीकरण उनके निवास क्षेत्र के आधार पर ही किया गया है। इनके क्षेत्र तत्कालीन भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, अतः यहाँ दिये जा रहे हैं। इनकी संख्या ५५ हैं। इसे पता चलता है कि आगमयुग में हमारा सम्पर्क किन क्षेत्रों में था। इन क्षेत्र वासियों के नाम शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, काय, मरुंड, भड़क, निन्नक, पक्करणिक, कुलाक्ष, गोंड, सिंहल, पारसक, आन्ध्र, अंबडक, तमिल, चिल्लक, पुलिंद, हारोस, डोम, पोक्काण, गंधाहारक, वाल्हीक, अज्झल, रोम, पास, प्रदूष, मलयाली, बन्धुक, चूलिक, कोंकणक, मेव, पल्लव, मालव, गग्गर, आभाषिक, कणवीर, चीना, ल्हासा, खस, खासी, नेदूर, मोंढ, डोम्बिलिक, लओस, वकुश, कैकय, अक्खाग, हूण, रोसक या रोमक, मरुक, रुत, चिलात और मौर्य हैं।

अन्तर्दीपज मनुष्यों के अट्ठाइस भेद बताये गये हैं। ये उनके शरीर रूपों पर निर्भर है। एकोरुक, अभाषिक, वैषाणिक, नांगोलिक, हय-गज-गो-शष्कुली-कर्ण, आदर्श-मेंढ-अयो-गो-अश्व-हस्ति-सिंह-व्याघ्र-मुख, अश्व-सिंह-कर्ण, अकर्ण, कर्ण-प्रावरण, उल्का-मेघ-विद्युत-मुख, विद्युत-धन-लष्ट-गूढ-शुद्ध-दन्त आदि उनके भेद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों से सम्बन्धित विशेष विवरण

शांतिसूरि ने जीव विचार प्रकरण के तीसरे अध्ययन में विभिन्न जीव जातियों से सम्बन्धित शरीर की ऊँचाई, आयु, कायस्थिति, प्राण और योनि-सम्बन्धी विवरण दिये हैं। इन्हें **सारणी ५** में दिया गया है। यह वर्णन अनुयोग द्वार, मार्गणा या गुणस्थान-आधारित नहीं है।

सारणी ५ : जीव-सम्बन्धी विवरण

		भेद-प्रभेद		प्राण	योनि	कुल	शरीर-ऊँचाई		आयु	
१.	एकेन्द्रिय	जीवि०	जीकां०		लाख	जन्म$\times$१०^{१२}	ज०	उ०	ज०	३०, वर्ष
	पृथ्वी	२२	४२	४	७	सं० २२	घनांगुल/असं.	१००० यो०	अंतर्मु०	२२,०००
	जल०				७	,, ८७	,,		,,	७०००
	वायु०				७	,, ७			,,	३०००
	तेज०				७	,, ३	,,		,,	१२ घण्टे
	प्रत्येक वन०				१०	,, २८	,,		,,	१०,०००
	साधारण वन०				१४	,,				
२.	दो इन्द्रिय	२	३	६	२	,, ७	घ०/सं०	१२ यो०	,,	१०,०००
३.	तीन इन्द्रिय	२	३	७	२	,, ८	घनांगुल	३/४ यो०	,,	४९ दिन
४.	चार इन्द्रिय	२	३	८	२	,, ९	घ० × सं०	१ यो०	,,	६ मास
५.	पांच इन्द्रिय	४	–	९, १०	–	–	घ० × सं०^{२}	१००० यो०		
	तिर्यंच	–	३४		४	सं० ग० ४३'५	–	–		कोटिपूर्व
	मनुष्य	–	९		१४	सं० ग० १२				उ० प०
	संमूर्छन	–	–		–	– –	–	–		अंतर्मु०
६.	देव	–	२	१०	४	उपवाद २६		१०,००० वर्ष		३३ सा०
७.	नारक	–	२	१०	४	उपवाद २५	–	–	अंतर्मु०	३३ सा०
	योग	३२	९८	–	८४ लाख	– १९७.५$\times$१०^{१२}				

सिद्ध जीवों का विवरण

ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में कर्म मल को पूर्णतः नष्ट करने वाले सिद्ध जीवों के पन्द्रह भेद बताये गये हैं—तीर्थंकर सिद्ध, केवलिसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, स्त्रीलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, गृहलिंगसिद्ध, अत्तीर्थसिद्ध, प्रत्येक बुद्ध सिद्ध, स्वयं बुद्ध सिद्ध, एक सिद्ध, अनेक सिद्ध, बुद्ध बोधित सिद्ध एवं तीर्थसिद्ध। दिगम्बर परम्परा में ये भेद नहीं माने जाते। इनमें अनेक भेद उनके सिद्धान्तों के अनुकूल भी नहीं हैं। इसका विवरण प्रज्ञापना में आया है। सिद्धों में देह, आयु, प्राण, योनि नहीं होते।

जीवकाण्ड की विषयवस्तु : जीवों के भेद-प्रभेद

शांतिसूरि के समान ही नेमचन्द्राचार्य ने भी जीवों के भेद-प्रभेद बताते हुए उनके एक-से-दस तक, चौदह, उन्नीस, सत्तावन और अट्ठानवें भेद कहे हैं। इन्हें वे जीव समास कहते हैं। इनका वर्णन निम्न प्रकार है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. एकेन्द्रिय : (i) पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्य निगोद, इतर निगोद × २ (बादर-सूक्ष्म)			= १२
२. (ii) प्रत्येक वनस्पति (प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित)			= २
			१४
३. १४ × ३ (पर्याप्त, अप०, निवृ०)		४२	
४. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ३ × ३ (प० अ० नि०)		९	
		५१	
५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच : गर्भज कर्मभूमिज : ३ (जलचरादि) × २ (संज्ञी-असंज्ञी) × २ (पर्याप्त, निवृत्य पर्याप्त)			= १२
संमूर्छन कर्मभूमिज : ३ × २ × ३ (प० अ०, नि०)			= १८
भोगभूमिज तिर्यंच : २ (स्थल, नभ) × २ (प० नि०)			= ४
६. पंचेन्द्रिय मनुष्य : (i) आर्य खण्ड ३ (प०, अ०, निवृ०)		३	
(ii) म्लेच्छ खण्ड ३ × २ (प०, नि०) (भोग भूमि, कुभोग भूमि)		६	
(iii) देव, नारक २ × २ (प० नि०)		४	
		१३	१३
			९८

इस विवरण में जीवों के भेद अधिक हैं, पर इनके वर्गीकरण में विविधता कम हैं। इनका वर्णन स्थान, योनि, कुल, अवगाहना के आधार पर किया जाता है। टीकाकार ने गणित का उपयोग करते हुए १९०, ३८०, ५७० तथा ४०६ जीव समास भी गिनाये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जीव विचार में अपर्याप्त के दो भेदों को मान्यता नहीं दी गई है। जीव काण्ड में बताया गया है कि शरीर पर्याप्त के पूर्ण न होने तक जीव निवृत्य पर्याप्त (रचना की अपूर्णता) एवं योग्य पर्याप्तियों के पूर्ण न होने से अन्तर्मुहूर्त में मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीव को लब्धि-अप्राप्त कहा गया है।

प्राण-सम्बन्धी **विवरण** दोनों ग्रन्थों में समान है। पर जीव विचार में पर्याप्तियों का विवरण नहीं है। साथ ही, जीव विचार में केवल चौरासी लाख योनियों का विवरण है जबकि जीव काण्ड में तीन प्रकार की आकृति योनियों के साथ, गुण योनियों (नौ) एवं तीन जन्म प्रकारों का भी विशद वर्णन है। आयु और अवगाहना सम्बन्धी विवरण दोनों में समान है, पर जीव विचार में कुल-कोटियों एवं संज्ञाओं का भी वर्णन नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा में प्रज्ञापनादि ग्रन्थों में गति, इन्द्रिय आदि २७ मार्गणा द्वारों की चर्चा है, पर जीव विचार में वह नहीं है। इसके विपर्यास में जीव काण्ड में प्रायः ५०० गाथाओं में १४ मार्गणा द्वारों के माध्यम से जीवों का विशद निरूपण है। प्रज्ञापना के २७ द्वारों में ये चौदह समाहित हैं।

जीवकाण्ड में प्रीति-विहीनता, तिर्यक्ता, मन-कर्म कुशलता, ऋद्धि-सुख-दिव्यता एवं जन्म-मरण रहितता के आधार पर पाँच **गतियों** में जीवों के प्रमाण का वितरण है। मनुष्य जीवों के विषय में बताया गया है कि उनमें तीन-चौथाई मानुषियाँ होती हैं। मानुषियों से तीन-सात गुने सर्वार्थसिद्धि के देव होते हैं। पर्याप्त मनुष्यों की संख्या ३×१०^{२८} बताई गयी है।

इन्द्रियाँ मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम एवं शरीर नामकर्म के उदय से निर्मित शरीर के चिह्नविशेष हैं। ग्रन्थकार ने इसका विषय क्षेत्र, आकार, अवगाहना एवं संख्या (जीव) बतायी है। **कायमार्गणा** के अन्तर्गत षट्काय का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण, आकार, निवास आदि का वर्णन करते हुए बताया है कि यह जीव कायरूपी कावटिका के माध्यम से कर्म-भार का वहन करता है। **योगमार्गणा** के अन्तर्गत पर्याप्ति और शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले मन-वचन-काय की प्रवृत्तियों की कर्म-ग्राहिणी शक्ति को योग बताया गया है। मन और वचन योग सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप से चार कोटियों में हैं। इनमें द्रव्यमन अंगोपांग नामकर्म के उदय से हृदय-स्थान में अष्ट-दल-कमल के आकार का होता है जिसकी क्षमता को भावमन कहते हैं। काययोग औदारिकादि कार्मणान्त पाँच प्रकार का होता है। **वेदमार्गणा** में वेदकर्म, निर्माण तथा अंगोपांग नामकर्म के उदय से होनेवाले तीन द्रव्य-भाव वेद-पुरुष, स्त्री व नपुंसक बताये गये हैं। इनमें उत्कृष्ट भोग एवं उत्तम गुण वाला पुरुष, स्व और पर को दोषों से आच्छादित करनेवाली स्त्री वेद, भट्टे में पकती हुई ईंट की अग्नि के समान तीव्रकषाई एवं उभयवेदरहित नपुंसक वेद माना है। लक्षण के अतिरिक्त विभिन्न वेद के जीवों का प्रमाण भी दिया गया है। **कषायमार्गणा** के अन्तर्गत कर्म-बन्ध एवं फल की शुभाशुभता की प्रतीक चार कषायों को शक्ति (चार प्रकार), लेश्या (१४ प्रकार), आयु बन्ध एवं प्रमाण के आधार पर वर्णित किया गया है। **ज्ञानमार्गणा** के अन्तर्गत पाँच ज्ञानों का विशद निरूपण है। इसमें श्रुतज्ञान का विवरण सर्वाधिक है। **संयममार्गणा** के अन्तर्गत मोहनीय कर्म क्षय या उपशम से व्रत धारण, समिति पालन, कषाय निग्रह, त्रि-दण्ड त्याग एवं इन्द्रिय जय रूप संयम के भावों का होना बताया गया है। जीव संयत, देशविरती एवं असंयती हो सकते हैं। संयम के सात भेदों के विवरण के साथ विभिन्न कोटि के संयमी जीवों की संख्या का भी विवरण है। **दर्शनमार्गणा** में चार दर्शनों की परिभाषा और संख्या का निरूपण है। **लेश्यामार्गणा** की अड़सठ गाथाओं में लेश्याओं का सोलह अधिकारों में वर्णन है और कषायानुरञ्जित योगप्रवृत्ति को लेश्या कहा गया है। यह जीव को पुण्य-पाप कर्मों से लिप्त कराती है। यह द्रव्य-भाव रूप होती है। यह वर्णन उत्तराध्ययन के ग्यारह द्वारों के विपर्यास में तुलनीय है।

भव्यत्वमार्गणा में अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि के आधार पर भव्यत्व-अभव्यत्व की परिभाषा दी गयी है। इसमें कर्म और नोकर्म द्रव्य परिवर्तन की भी चर्चा है। **सम्यक्त्वमार्गणा** में षट् द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकायों का नाम, लक्षण, स्थिति, क्षेत्र, संख्या, स्थान एवं फल के आधार पर सात शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। इसमें अजीव द्रव्य का वर्णन विशेष है। पुद्गल के तेइस वर्गणात्मक भेद, कुन्दकुन्द वर्णित छह एवं चार भेद के अतिरिक्त पृथ्वी, जल, छाया, चतुरिंद्रिय विषय, कर्म और परमाणु के भेद से छह अन्य भेद भी बताये गये हैं। उमास्वामी के समान द्रव्यों के कार्य भी बताये गये हैं। **संज्ञीमार्गणा** के अन्तर्गत नो-इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाले ज्ञान या संवेदन को संज्ञा बताकर उसे शिक्षा, क्रिया, उपदेश एवं आलाप के रूप में चार प्रकार का बताया गया है। श्वेताम्बर परम्परा में संज्ञाओं की संख्या दस तक बताई गई है। **आहारमार्गणा** के अन्तर्गत शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, कायरूप धारण करने योग्य जो कर्म वर्गणाओं के ग्रहण को आहार कहा गया है।

मार्गणाओं के अतिरिक्त जीवकांड में भावात्मक प्रकृति व विकास को ध्यान में रखकर चौदह गुणस्थानों का भी विशद् निरूपण है। वस्तुतः यह बताया गया है कि जीवों से सम्बन्धित बीस प्ररूपणाएँ मार्गणा एव गुणस्थान—दो ही कोटियों मे समाहित हो जाती हैं। इन दोनों का ज्ञान आध्यात्मिक विकास के लिये लाभकारी है।

उपसंहार

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रचनाकाल के अल्प अन्तराल के बावजूद भी दोनों ग्रन्थों की विषय-वस्तु में पर्याप्त अन्तर है। एक ओर 'जीव विचार' में केवल 'जीवों' का वर्णन है, वहीं जीवकांड में 'जीवों' के साथ अनेक जीव-सम्बद्ध प्रकरणों का वर्णन है। 'जीव विचार' वर्गीकरण प्रधान है, जबकि जीवकांड 'वर्गीकरण' के साथ व्यापक परिवेश का निरूपण करता है। इसका वर्णन आध्यात्मिक विकास की श्रेणियों पर भी आधारित है। जीवकांड में प्रायः प्रत्येक विवरण में संख्यात्मकता पाई जाती है, गणितीय संदृष्टियाँ पाई जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'जीवकांड' का दृष्टिकोण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धिमानों के बोधार्थ रहा है, जबकि शान्तिसूरि ने तो स्पष्ट ही अबुद्ध-बोधार्थं अपना निरूपण किया है। यहीं कारण है, जहाँ शान्तिसूरि बाह्य-बोध्य वर्गीकरण पर सीमित रह गये हैं, जबकि नेमचन्द्र बहुत गहन एवं गम्भीर ज्ञानी सिद्ध हुए हैं। पर्याप्ति, कुल एवं योनि-जन्म आदि का विवरण न देना शान्तिसूरि के ग्रन्थ को कमी है और अध्यात्म विकास का आधार लेकर वर्णन करना जीवकांड की महती विशेषता है। यह भी स्पष्ट है कि दोनों ही जैन परम्पराओं में जीव सम्बन्धी विवरणों में काफी समानता है। जीव विज्ञान सम्बन्धी यह विवरण आधुनिक जोव वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षणीय है।

निर्देश

१. (अ) नेमचन्द्र आचार्य; **गोम्मटसार जीवकांड,** परमश्रुत प्रभावक मंडल, अगास, १९७२।

(ब) शान्तिसूरीश्वर; **जीवविचार प्रकरणम्,** जैन मिशन सोसायटी, मद्रास, १९५०।

२. नेमिचन्द्र, शास्त्री; **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा–२,** दि० जैन विद्वत् परिषद्, सागर, १९७४, पे० ४१७।

३. जोहरापुरकर, वि० और काशलीवाल, क०; **वीर शासन के प्रभावक आचार्य,** भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७५, पे० ७८।

४. साध्वी चन्दना (सं०); **उत्तराध्ययन,** सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९७६, पेज ३८०।

५. आर्य श्याम; **प्रज्ञापना सूत्र–१,** आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, १९८३, पेज ३९।

६. महाप्रज्ञ, युवाचार्य; **दशवैकालिक : एक समीक्षात्मक अध्ययन,** जैन श्वे० तेरापंथी महासभा, कलकत्ता–१, १९६७, पेज ११६।

७. वट्टकेर, आचार्य; **मूलाचार–१,** भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९८४, पेज १७६।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org